Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

दिवाकर पारीक*

* एमए, नेट (राजनीति विज्ञान) डी 133, आजाद नगर, भीलवाड़ा (राज.) भारत

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय जनसंघ के प्रमुख वैचारिक चिंतक पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य उन मूल सिद्धांतों का परीक्षण करना है जिनके माध्यम से उन्होंने भारतीय राजनीति, समाज एवं अर्थव्यवस्था के लिए भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में उनके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एकात्म मानववाद, विराट पुरुष, स्वदेशी, अंत्योदय, विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था तथा कृषि संबंधी विचारों का विवेचन किया गया है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उनका चिंतन राष्ट्रहित, सामाजिक समरसता, आर्थिक स्वावलंबन तथा समाज के अंतिम व्यक्ति के कल्याण पर आधारित विकास-दृष्टि का प्रतिपादन करता है।

शब्द कुंजी – एकात्म मानववाद, अंत्योदय, स्वदेशी, सामाजिक समरसता, अखंड भारत, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद।

प्रस्तावना – भारतीय राजनीतिक चिंतन में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे भारतीय जनसंघ के वैचारिक वास्तुकार थे, जिसे वर्तमान भारतीय जनता पार्टी का पूर्ववर्ती राजनीतिक संगठन माना जाता है। उन्होंने संगठन को केवल राजनीतिक दिशा ही नहीं दी बल्कि ऐसी वैचारिक आधारभूमि भी विकसित की जिसने भारतीय राजनीति में उसे विशिष्ट पहचान प्रदान की। उनका चिंतन राजनीति तक सीमित न रहकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों को भी समान रूप से प्रभावित करता है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक कुशल संगठनकर्ता, राजनेता एवं मौलिक चिंतक थे। उन्होंने भारतीय समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं एवं वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ऐसे सिद्धांत प्रतिपादित किए जो भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप विकास की दिशा प्रस्तुत करते हैं। उनका मत था कि किसी भी राष्ट्र की राजनीतिक व्यवस्था तभी स्थायी हो सकती है जब उसका आधार उसकी सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक परंपराओं एवं नैतिक मूल्यों से जुड़ा हो। इसी कारण उन्होंने राष्ट्र, समाज एवं व्यक्ति के मध्य संतुलित संबंधों पर विशेष बल दिया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में सक्रिय रहते हुए उन्हें भारतीय समाज की संरचना, चुनौतियों एवं सांस्कृतिक विरासत को निकट से समझने का अवसर मिला। इस अनुभव ने उनके राजनीतिक एवं आर्थिक चिंतन को व्यावहारिक आधार प्रदान किया। उनका विश्वास था कि भारत की समस्याओं का समाधान विदेशी विचारधाराओं की नकल में नहीं बल्कि भारतीय जीवन-दृष्टि एवं सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप नीतियों के निर्माण में निहित है।

इसी दृष्टि से उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, स्वदेशी, अंत्योदय तथा विकेंद्रीकृत आर्थिक व्यवस्था जैसी अवधारणाओं के माध्यम से भारतीय विकास चिंतन को नई दिशा देने का प्रयास किया। इन सिद्धांतों में व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक समरसता एवं राष्ट्रीय एकता को परस्पर पूरक माना गया है। प्रस्तुत शोध पत्र उनके राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन के प्रमुख आयामों का विश्लेषण करते हुए उनके चिंतन की वैचारिक संरचना तथा समकालीन प्रासंगिकता का अध्ययन करता है।

राजनीतिक नैतिकता, गुटबाजी एवं मतदाता का कर्तव्य– पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय राजनीति में बढ़ती गुटबाजी और नैतिक अवनति को लोकतंत्र के लिए गंभीर चुनौती माना। उनके अनुसार जब राजनीतिक दलों में संगठनात्मक हितों की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वार्थ प्रमुख हो जाता है, तब गुटबाजी जन्म लेती है। यह केवल मतभेद का परिणाम नहीं बल्कि अहंकार एवं विकृत मानसिकता की सामाजिक अभिव्यक्ति है, जो संगठन की एकता तथा लोकतांत्रिक मूल्यों दोनों को कमजोर करती है।

चुनावी राजनीति के संदर्भ में उन्होंने नैतिक उत्तरदायित्व को सर्वोपरि माना। उनका स्पष्ट मत था कि किसी प्रतिष्ठित राजनीतिक दल से जुड़े होने मात्र से कोई प्रत्याशी मत पाने का अधिकारी नहीं हो जाता। यदि उसका चरित्र, आचरण अथवा सार्वजनिक जीवन मतदाताओं की अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं है, तो केवल दलगत निष्ठा के आधार पर उसका समर्थन उचित नहीं कहा जा सकता।

उन्होंने प्रत्याशी चयन की प्रक्रिया पर भी प्रश्न उठाते हुए कहा कि यदि पार्टी नेतृत्व पक्षपातपूर्ण या अनुचित निर्णय लेता है, तो उसे सुधारने का दायित्व जागरूक मतदाता का है। इस प्रकार उन्होंने मतदाता को केवल मतदान करने वाला नागरिक नहीं बल्कि लोकतांत्रिक व्यवस्था का सक्रिय संरक्षक माना।

उपाध्याय जी ने उन राजनीतिक दलों की भी आलोचना की जो राजनीति को केवल सत्ता प्राप्ति का साधन समझते हैं। उनके अनुसार ऐसे दल चुनाव को 'घुड़दौड़' की तरह देखते हैं और केवल संभावित विजेता के

साथ खड़े होने का प्रयास करते हैं। उन्होंने इस प्रवृत्ति को लोकतांत्रिक आदर्शों के विपरीत बताते हुए सिद्धांतनिष्ठ राजनीति की आवश्यकता पर बल दिया।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, अखंड भारत एवं सर्वोपरि राष्ट्रहित– पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक चिंतन का केंद्रीय आधार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लिखे गए उनके लेख 'अखंड भारत: उद्देश्य और साधन' में राष्ट्र की एकता, सांस्कृतिक निरंतरता एवं राष्ट्रीय चेतना संबंधी उनके विचार स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होते हैं। उनका विश्वास था कि भारत की राष्ट्रीय पहचान उसकी सांस्कृतिक परंपरा से निर्मित हुई है और राष्ट्रीय एकता का आधार भी यही सांस्कृतिक विरासत है।

उनके अनुसार भारत में रहने वाले प्रत्येक समुदाय को, चाहे वह मुस्लिम हो या ईसाई, 'इस देश में हिंदू संस्कृति की स्थायी राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के साथ खुद को पहचानना चाहिए' । इस विचार के माध्यम से उन्होंने सांस्कृतिक आधार पर राष्ट्रीय एकात्मता को राष्ट्र की स्थिरता एवं अखंडता के लिए आवश्यक माना।

सामाजिक संगठन के संदर्भ में उन्होंने वर्ग–संघर्ष के स्थान पर समन्वय, सहयोग एवं सामाजिक समरसता पर बल दिया। उनके विचार में समाज की स्थायी प्रगति संघर्ष से नहीं बल्कि पारस्परिक विश्वास, सहभागिता एवं संतुलित सामाजिक व्यवस्था से संभव है।

उनके समग्र राजनीतिक चिंतन में राष्ट्रहित सर्वोच्च स्थान रखता है। उनका मत था कि प्रत्येक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक निर्णय का मूल्यांकन राष्ट्र के व्यापक हित को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। इसी कारण उनका दर्शन राष्ट्र की एकता, अखंडता एवं संप्रभुता को सुदृढ़ करने की प्रेरणा देता है तथा राष्ट्रहित को व्यक्तिगत एवं दलगत हितों से ऊपर स्थापित करता है।

एकात्म मानववाद एवं 'विराट पुरुष' की संकल्पना– पंडित दीनदयाल उपाध्याय के समग्र दर्शन का मूल आधार 'एकात्म मानववाद' है, जिसमें 'विराट पुरुष' अथवा समग्र समाज की अवधारणा को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। उनके अनुसार समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं बल्कि एक जीवंत एवं एकीकृत इकाई है, जिसकी तुलना 'विराट पुरुष' से की जा सकती है। इस व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग एवं समुदाय का अपना विशिष्ट स्थान और महत्व है तथा सभी मिलकर समाज की समग्र संरचना का निर्माण करते हैं। उनका मत था कि यदि समाज का कोई भी वर्ग, समुदाय अथवा व्यक्ति उपेक्षा, अभाव या पीड़ा का जीवन जीने के लिए विवश हो, तो उसका प्रभाव केवल उसी तक सीमित नहीं रहता बल्कि संपूर्ण समाज पर पड़ता है। समाज रूपी 'विराट पुरुष' का कोई भी अंग दुर्बल होने पर उसकी समग्र शक्ति एवं संतुलन प्रभावित होता है।

उपाध्याय जी के अनुसार वास्तविक एकात्मता तभी संभव है जब व्यक्ति स्वयं को समाज की व्यापक समष्टि का अभिन्न अंग माने। यदि कोई व्यक्ति या सामाजिक घटक इस समग्र व्यवस्था से पृथक हो जाता है, तो सामाजिक संतुलन एवं एकात्मता दोनों कमजोर पड़ने लगते हैं।

इसी आधार पर उन्होंने नीति–निर्माताओं एवं समाज का नेतृत्व करने वालों के लिए 'अंत्योदय' की भावना को अनिवार्य माना। उनके अनुसार विकास की प्रत्येक योजना का केंद्र समाज का अंतिम व्यक्ति होना चाहिए। तभी समाज रूपी 'विराट पुरुष' का प्रत्येक अंग सुरक्षित, सम्मानित एवं सक्रिय रह सकेगा। इस प्रकार एकात्म मानववाद, विराट पुरुष और अंत्योदय उनके चिंतन के परस्पर पूरक सिद्धांत हैं, जो समावेशी एवं संतुलित समाज की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं।

अंत्योदय की संकल्पना एवं इसका व्यावहारिक स्वरूप– पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक एवं आर्थिक चिंतन में 'अंत्योदय' को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। यह केवल सैद्धांतिक अवधारणा नहीं थी, बल्कि उनके व्यक्तिगत अनुभवों एवं सामाजिक संवेदनशीलता से भी जुड़ी थी। प्रारंभिक जीवन में गरीबी एवं अभाव का अनुभव करने के कारण वे समाज के वंचित एवं कमजोर वर्गों की समस्याओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहे।

उनके अनुसार अंत्योदय का अर्थ उन लोगों का उत्थान है जो आर्थिक, सामाजिक अथवा अन्य कारणों से विकास की मुख्यधारा से वंचित रह गए हैं। उनका विश्वास था कि किसी समाज की प्रगति का वास्तविक आकलन उसके सबसे समृद्ध वर्ग से नहीं बल्कि सबसे अधिक वंचित व्यक्ति की स्थिति से किया जाना चाहिए।

गांधी जी एवं विनोबा भावे द्वारा प्रयुक्त 'सर्वोदय' की अवधारणा का उल्लेख करते हुए उन्होंने 'अंत्योदय' पर विशेष बल दिया। उनका मत था कि विकास की प्रक्रिया समाज के अंतिम व्यक्ति से आरंभ होनी चाहिए। इसलिए आर्थिक योजनाओं की सफलता का मूल्यांकन उन लोगों से किया जाना चाहिए जो विकास की सीढ़ी के सबसे निचले स्तर पर हैं।

अपने विचार को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने कंबल वितरण का उदाहरण दिया। उनके अनुसार यदि किसी व्यक्ति के पास बारह कंबल हों, तो उनका वितरण समान रूप से नहीं बल्कि आवश्यकता के आधार पर होना चाहिए। खुले आकाश के नीचे रहने वाले व्यक्ति को छह कंबल, पेड़ के नीचे रहने वाले को तीन, झोपड़ी में रहने वाले को दो तथा जिसके पास पहले से दो कंबल हों उसे केवल एक कंबल मिलना चाहिए। इस उदाहरण के माध्यम से उन्होंने स्पष्ट किया कि संसाधनों का न्यायसंगत वितरण समानता नहीं बल्कि आवश्यकता के आधार पर होना चाहिए।

इसी प्रकार बल्ब का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि जहाँ पहले से 25 वाट का बल्ब जल रहा हो वहाँ 100 वाट का बल्ब लगाना उचित नहीं है। इसके बजाय 25 वाट का बल्ब उस स्थान पर लगाया जाना अधिक उपयोगी होगा जहाँ पूर्ण अंधकार हो। इस उदाहरण से उन्होंने विकास योजनाओं में प्राथमिकताओं के निर्धारण तथा संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग का समर्थन किया।

उनके अनुसार समाज के पीड़ित एवं उपेक्षित वर्गों के जीवन में आशा, सम्मान एवं आत्मविश्वास का संचार करना ही अंत्योदय की वास्तविक भावना है। वे अश्रुपूरित आँखों से आंसू पोंछने और मुरझाए चेहरों पर मुस्कुराहट लौटाने को 'अंत्योदय' की पहली सीढ़ी मानते थे। इससे स्पष्ट होता है कि उनके लिए अंत्योदय केवल आर्थिक सहायता का कार्यक्रम नहीं बल्कि मानवीय संवेदना एवं सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित व्यापक विकास–दृष्टि थी।

आर्थिक नियोजन एवं विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था– पंडित दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन भारतीय समाज की आवश्यकताओं एवं वास्तविक परिस्थितियों पर आधारित था। उनका मानना था कि भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक योजनाएँ केवल प्रशासनिक स्तर पर तैयार नहीं की जानी चाहिए, बल्कि उनमें समाज की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित होनी चाहिए। उनके अनुसार देश की बड़ी आबादी गरीबी, अशिक्षा तथा परंपरागत जीवन–व्यवस्था से प्रभावित है। इसलिए विकास योजनाएँ तभी प्रभावी होंगी जब उनका निर्माण जनसहभागिता एवं स्थानीय

आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाए।

उन्होंने ऊपर से नीचे थोपे गए विकास मॉडल की अपेक्षा नीचे से ऊपर विकसित होने वाली योजना प्रणाली का समर्थन किया। उनका मत था कि स्थानीय समाज की भागीदारी से तैयार योजनाएँ अधिक व्यावहारिक, उत्तरदायी तथा स्थायी सिद्ध होती हैं।

उपाध्याय जी ने विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था तथा स्वावलंबी क्षेत्रों के विकास पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार आर्थिक शक्ति का अत्यधिक केंद्रीकरण व्यक्ति की स्वतंत्रता, सामाजिक संतुलन तथा स्थानीय विकास के लिए बाधक बनता है। इसके विपरीत विकेंद्रीकृत व्यवस्था प्रत्येक क्षेत्र की आवश्यकताओं, संसाधनों एवं विशिष्टताओं के अनुरूप विकास का अवसर प्रदान करती है तथा मानवीय गरिमा एवं आत्मनिर्भरता को भी सुदृढ़ करती है।

अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने स्वामी विवेकानन्द का उल्लेख करते हुए कहा कि भारत की प्रमुख समस्या संसाधनों का अभाव नहीं बल्कि श्रसामर्थ्य की कमीश है। इसलिए राष्ट्र के विकास का पहला लक्ष्य समाज की आंतरिक क्षमता, आत्मविश्वास तथा कार्यकुशलता का विकास होना चाहिए। उनका विश्वास था कि सक्षम समाज ही आत्मनिर्भर एवं समृद्ध राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

स्वदेशी : आर्थिक नीति से आगे राष्ट्रीय स्वाभिमान का विचार– पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने स्वदेशी को केवल आर्थिक नीति के रूप में नहीं देखा। उनके अनुसार स्वदेशी का अर्थ विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार या केवल देश में निर्मित उत्पादों का उपयोग भर नहीं है। यह राष्ट्र के आत्मसम्मान, सांस्कृतिक चेतना तथा आर्थिक स्वावलंबन से जुड़ी व्यापक अवधारणा है।

उन्होंने स्पष्ट किया कि स्वदेशी का वास्तविक उद्देश्य ऐसी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना है जो भारतीय परिस्थितियों, संसाधनों तथा सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप हो। इसलिए स्वदेशी केवल उपभोग की नीति नहीं बल्कि राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा आत्मनिर्भरता की अभिव्यक्ति भी है।

उनके विचार में स्वदेशाभिमान और आर्थिक विकास परस्पर पूरक हैं। जब कोई राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं की क्षमता, उत्पादन एवं संसाधनों पर विश्वास करता है, तभी उसकी आर्थिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीय आत्मविश्वास दोनों सुदृढ़ होते हैं। इस दृष्टि से स्वदेशी उनके समग्र राष्ट्रवादी एवं आर्थिक चिंतन का महत्वपूर्ण आधार है।

कृषि नीति एवं किसान कल्याण– पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की। उनका मत था कि भारत की आर्थिक संरचना का आधार कृषि है, इसलिए विकास नीतियों में कृषि एवं किसान दोनों को केंद्र में रखा जाना चाहिए। 29 जनवरी 1962 को प्रकाशित अपने एक लेख में उन्होंने लिखा कि देश की लगभग 72 प्रतिशत जनसंख्या की आय का प्रमुख स्रोत कृषि है तथा राष्ट्रीय आय का लगभग आधा भाग इसी क्षेत्र से प्राप्त होता है। इसलिए कृषि की उपेक्षा राष्ट्रीय विकास के लिए हानिकारक सिद्ध होगी।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि केवल औद्योगीकरण पर बल देकर कृषि की अनदेखी करना दीर्घकाल में उद्योगों के लिए भी लाभकारी नहीं होगा। उनके अनुसार जब किसानों की आय एवं क्रयशक्ति बढ़ेगी तभी औद्योगिक उत्पादों के लिए व्यापक एवं स्थायी बाजार विकसित हो सकेगा। कृषि सुधार के संबंध में उन्होंने अनेक व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किए। सबसे पहले उन्होंने भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप मध्यम आकार के खेतों का समर्थन किया। उनका मत था कि अमेरिका जैसे बड़े कृषि फार्म भारत के लिए उपयुक्त नहीं हैं। उन्होंने लगभग पाँच एकड़ सिंचित भूमि को एक व्यवहार्य आर्थिक इकाई माना।

किसानों के हितों की रक्षा के लिए उन्होंने न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसी व्यवस्था का समर्थन करते हुए सुझाव दिया कि सरकार को बुवाई से पूर्व ही कृषि उत्पादों का न्यूनतम मूल्य घोषित कर देना चाहिए ताकि किसान अपनी लागत निकालने के साथ उचित लाभ भी प्राप्त कर सके।

उन्होंने कोऑपरेटिव फार्मिंग का भी विरोध किया। उनके अनुसार यह व्यवस्था न तो लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप है और न ही प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध होती है।

समग्रत: उनकी कृषि नीति का उद्देश्य किसान की आर्थिक सुरक्षा, कृषि की उत्पादकता, ग्रामीण स्वावलंबन तथा राष्ट्रीय आर्थिक विकास के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करना था।

निष्कर्ष – पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक चिंतन भारतीय संस्कृति, सामाजिक समरसता एवं आत्मनिर्भर विकास की व्यापक अवधारणा पर आधारित है। उनका दर्शन केवल सैद्धांतिक विमर्श तक सीमित नहीं रहा, बल्कि राष्ट्र के समग्र विकास के लिए व्यावहारिक दिशा भी प्रदान करता है। उन्होंने राजनीति को नैतिक मूल्यों से, अर्थव्यवस्था को मानवीय आवश्यकताओं से तथा सामाजिक व्यवस्था को सांस्कृतिक आधार से जोड़ते हुए भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप विकास का वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

उनके राजनीतिक विचार लोकतांत्रिक नैतिकता, उत्तरदायी मतदाता तथा राष्ट्रहित की सर्वोच्चता पर आधारित हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि स्वस्थ लोकतंत्र केवल सशक्त संस्थाओं से नहीं बल्कि सिद्धांतनिष्ठ राजनीति, जागरूक नागरिकों तथा नैतिक सार्वजनिक जीवन से निर्मित होता है। इसी प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की उनकी अवधारणा राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समन्वय तथा सांस्कृतिक निरंतरता को राष्ट्र की स्थिरता का आधार मानती है।

एकात्म मानववाद एवं 'विराट पुरुष' की संकल्पना के माध्यम से उन्होंने व्यक्ति और समाज के संबंध को समग्र दृष्टि से स्पष्ट किया। उनके अनुसार समाज के अंतिम व्यक्ति का उत्थान ही वास्तविक विकास का मापदंड है। इसी विचार को उन्होंने 'अंत्योदय' के सिद्धांत में मूर्त रूप दिया, जिसमें संसाधनों के न्यायसंगत वितरण तथा वंचित वर्गों के कल्याण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है।

आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था, जनभागीदारी एवं स्वावलंबन का समर्थन किया। उनका विश्वास था कि विकास तभी स्थायी हो सकता है जब योजनाएँ स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप हों तथा समाज की सक्रिय भागीदारी से संचालित हों। इसी प्रकार उन्होंने स्वदेशी को केवल आर्थिक नीति नहीं बल्कि राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं आत्मनिर्भरता का आधार माना।

कृषि संबंधी उनके विचार भारतीय अर्थव्यवस्था में किसान की केंद्रीय भूमिका को रेखांकित करते हैं। उन्होंने कृषि को राष्ट्रीय विकास की प्राथमिकता मानते हुए किसानों के लिए लाभकारी मूल्य, मध्यम आकार के खेत तथा व्यावहारिक कृषि नीतियों का समर्थन किया। उनका मत था कि कृषि और उद्योग परस्पर पूरक हैं तथा कृषि की समृद्धि के बिना संतुलित आर्थिक

विकास संभव नहीं है।

समग्रत: पंडित दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन भारतीय राजनीतिक विचारधारा में एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। राष्ट्रहित, सामाजिक समरसता, अंत्योदय, स्वदेशी तथा आत्मनिर्भर विकास से संबंधित उनके सिद्धांत आज भी नीति-निर्माण एवं समकालीन राजनीतिक विमर्श में प्रासंगिक बने हुए हैं। इसलिए उनके राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन का अध्ययन आधुनिक भारत की वैचारिक दिशा तथा विकास संबंधी चुनौतियों को समझने की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गुलेरिया, चेतन सिंह. (2023). 'दीनदयाल उपाध्याय की अन्त्योदय संकल्पना'- International Journal of Education] Modern Management] Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)5(2-II), 83–89
2. तिवारी, विवेकानन्द. (2023). 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय: कृतित्व, व्यक्तित्व तथा विरासत' कृष्ण कुमार मित्तल प्रकाशन।
3. कमल, के. एल. (2024). 'भारतीय राजनीतिक चिन्तन' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
4. सिंह, वीना. (2020). 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचार और दर्शन' सांस्कृतिक और सामाजिक अनुसंधान, 1(2), 33-35.
5. सिंह, जितेन्द्र. ।शर्मा, मीनाक्षी. (2025). 'समकालीन भारतीय राजनीति में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता' शोध मंथन, 16 (विशेषांक), 65-69.
6. कुमार, अनिल. (2025). दीनदयाल उपाध्याय के 'दार्शनिक विचार– चिति व विराट की वर्तमान संदर्भ में महत्ता' International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT) 13(8) h673–h677.

****